

८

राष्ट्रीय सरकार

सुभाषित

पुराणमित्येव न साधु सर्व।
न चापि काव्यम् नवमित्यवयम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते।
मूढः पर-प्रत्यय-नेय-बुद्धिः॥

-महाकवि कालिदास

कोई चीज़ पुरानी है, इसीलिए भली नहीं हो जाती और न ही कोई चीज़ नई है, इसलिए मनोहारी हो जाती है। बुद्धिमान् लोग अपने विवेक की तराजू पर तोलकर किसी एक को स्वीकार करते हैं। पर मूर्ख लोग दूसरों के कहने पर अपने विवेक और बुद्धि को ताक पर रख देते हैं। (आधुनिक सन्दर्भ में इसका अर्थ यह होगा – कोई राजनीतिक दल पुराना है, इसलिए भला नहीं हो जाता और कोई राजनीतिक दल नया है, इसलिए बुरा नहीं हो जाता। इसलिए समझदार मत्तदाता को चाहिए कि अपनी बुद्धि के अनुसार देशहित की बात सोचकर उपयुक्त प्रत्याशी को ही मत दें।)

चुनाव में वोट किसको दें?

यूनान के महान दार्शनिक प्लेटो ने कहा है—"The wise men who refuse to take part in government are punished by the government of bad men." जो बुद्धिमान् लोग शासन चलाने में स्वयं भाग लेने से इन्कार कर देते हैं, उन्हें दुष्ट मनुष्यों द्वारा शासित होने का दण्ड भोगना पड़ता है। इसलिए राजनीति को कीचड़, दलदल, छल-कपट, गुण्डागिरी या निहित स्वार्थों का जमघट आदि कुछ भी कहकर कितनी ही गाली क्यों न दे लो, परन्तु न तो उससे बचने का कोई रास्ता है, और न ही उसका फल भोगने से बचने का। भले ही आप राजनीति से कितनी ही नफरत क्यों न करें, और यह भी भले ही कहते रहें—'प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'—कीचड़ को धोने से बेहतर है कि पहले ही उसके स्पर्श से बचे रहें पर कीचड़ आपको बिना स्पर्श किये बिना नहीं छोड़ता, चाहे कितने ही बच-बच कर चलते रहें।

पिछले दिनों कुछ पर्यावरण विशेषज्ञों ने कहा कि भारत की राजधानी दिल्ली अन्य महानगरों की अपेक्षा पर्याप्त कम प्रदूषण वाली है। फिर भी जिस तेज़ी से प्रदूषण बढ़ता जा रहा है उसका परिणाम यह है कि इस समय हर दिल्लीवासी को कम से कम तीन सिगरेट जितना धुआं रोज पीना पड़ता है। अब आप भले

ही सिगरेट से कितना ही परहेज़ करें, पर यदि दिल्ली में रहते हैं और वहां की हवा में सांस लेते हैं तो बिना चाहे भी तीन सिगरेट रोज़ पीनी ही पड़ जाती हैं, अर्थात् उतना प्रदूषण तो झेलना ही पड़ता है। यही बात राजनीति की भी है। आप कितना ही उसे अच्छूत समझते रहें, पर उसकी छूत तो छूत के रोग की तरह आपको कभी अच्छूता नहीं छोड़ेगी।

फिर जब से राष्ट्रों ने राज्यों का रूप लिया है तब से वे राज्य-सत्ता के इस कदर केन्द्र बन गए हैं कि ग्रामों और कस्बों की स्वायत्तता की बात तो जाने दीजिए, व्यक्ति भी स्वायत्त नहीं रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य की यह अधिनायकता जनता की सरकारोपजीवी वृत्ति के कारण और चरम पर पहुंच गई है। यह ठीक है कि लोकतंत्र में अधिनायकवाद की अपेक्षा व्यक्ति की गरिमा कहीं अधिक सुरक्षित रहती है, इसीलिए अधिनायकवादी देश लोकतंत्र के लिए तरसते हैं। पर जब लोकतंत्र पर 'माफिया' हावी हो जाए तो?

तभी प्लेटो के उक्त कथन की सार्थकता अनुभव होती है। यदि किसी परिस्थिति-विशेष को आप पसन्द नहीं करते तो आपको यह भी सोचना होगा कि उस परिस्थिति को पैदा करने में आपका कितना हाथ है। आप कह सकते हैं कि हम तो मुंडेर पर खड़े तमाशा देखते रहे और हमारे सामने से कारवां गुज़रता रहा। हां, आपका यह तटस्थ होकर तमाशा देखते रहना भी उस परिस्थिति को पैदा करने में बहुत सहायक है। उसके लिए आप भी उतने ही जिम्मेदार हैं जितने कारवां में शामिल होकर नारे लगाने वाले। इसीलिए कहा जाता है कि लोकतंत्र में हमें वैसी ही सरकार मिलती है जैसी सरकार के हम पात्र होते हैं, क्योंकि वोट के रूप में हमें ऐसा ब्रह्मास्त्र प्राप्त है जिसके द्वारा हम स्वयं हमारे भाग्य का निर्णय करने वालों का चुनाव कर सकते हैं। हमारा वोट कितना शक्तिशाली है, ज़रा इसकी कल्पना तो करिए! पर यदि आप इस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग नहीं करते, सही समय और सही स्थान पर प्रयोग नहीं करते तो आपके पास उस अभागे व्यक्ति की तरह पश्चात्ताप के सिवाय पीछे क्या बचेगा जिसे कड़ी तथ्यता के बाद पारसमणि प्राप्त हुई थी, पर उसने उसे सामान्य पत्थर समझकर तालाब में फेंक दिया था? आपका वोट जहां आपका ब्रह्मास्त्र है, वहीं आपकी पारसमणि भी है। कभी उसको मामूली और व्यर्थ की वस्तु मत समझिए।

जब हम आपके वोट को ब्रह्मास्त्र और पारसमणि कह रहे हैं, तब यह भी आपको समझना होगा कि यह अहस्तान्तरणीय है, केवल आपके लिए है, कहीं किसी भय या प्रलोभन से या किसी के बहलाने से किसी ऐसे गैरे की झोली में मत डाल देना उसी जौहरी को देने की बात सोचना, जो उसका सही मूल्य पहचानता हो और ईमानदारी से उसका इस्तेमाल करने को तैयार हो।

शायद आप कहें कि घुमा फिराकर इधर—उधर की बात करने से क्या फायदा? सीधी—सादी बात क्यों नहीं कहते? आखिर आप कहना क्या चाहते हैं? लीजिए सीधी बात ही कहते हैं।

चुनावों का घमासान प्रारम्भ हो गया है। ५०० सीटों के लिए सात हजार उम्मीदवार हैं। मतदाताओं की संख्या भी ५० करोड़ से कम नहीं है। इतना बड़ा लोकतंत्रीय चुनाव संसार में और कहीं नहीं होगा। विभिन्न राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों के अलावा निर्दलीय उम्मीदवारों की संख्या भी कम नहीं है। अंधाधुंध पैसा बहाया जा रहा है। लगता है, लोकतंत्र के बजाय पूंजीतंत्र का महारास हो रहा है। थैलीशाहों की थैलियां खुली हुई हैं विदेशों से भी निहित स्वार्थों के लोग पैसा भेजने में और यहां के लोग उसे प्राप्त करने में पीछे नहीं हैं। सरकार का कहना है कि चुनाव पर लगभग १३० करोड़ रु० खर्च होगा। पर जानकार इस खर्च का अन्दाज ३००० करोड़ अर्थात् तीस अरब रु० लगाते हैं। फिर जवाहर रोजगार योजना और पंचायती राज के नाम से जो रेवड़ियां बांटी जा रही हैं, वे भी कहीं आसमान से थोड़ी टपकेंगी? करोड़ों रु० की दलाली, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विनियोग और नित्य बढ़ती महंगाई से होने वाली कमाई भी और कब काम आएगी?

पर प्रश्न फिर वहीं का वहीं है। किस पार्टी को वोट दें? कोई पार्टी हमारी कसौटी पर खरी नहीं उतरती। इसलिए किसी पार्टी को वोट देने की बात हमारी समझ में नहीं आती। हरेक पार्टी में भले-बुरे दोनों तरह के लोग हैं। हमारी दृष्टि में पार्टी के बजाय आप व्यक्तियों पर ध्यान दीजिए। यह मत सोचिए कि अमुक व्यक्ति के जीतने की उम्मीद है, इसलिए इसी को वोट देना चाहिए। जीतने की उम्मीद के पीछे अपने सिद्धान्तों और मान्यताओं की अवहेलना मत कीजिए। जय या पराजय गौण बात है। मुख्य बात है—देश का सुशासन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में आना चाहिए जो बहुसंख्यकों के हितों को हानि पहुंचा कर भी अल्पसंख्यकों की तुष्टि न करें; जो स्वयं भ्रष्टाचार से मुक्त हों और शासनतंत्र को भ्रष्टाचार से मुक्त कर सकें; साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन न दें और न साम्प्रदायिक दलों से समझौता करें; जो देश के सब नागरिकों के लिए समान आचार संहिता के पक्षपाती हों, जो न दलाली खाएं न खाने दें, जो भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों की रक्षा के लिए सन्नद्ध हों; जो देश की एकता और रक्षा के लिए सदा सजग हों जो अपने व्यवहार से जातिप्रथा के उन्मूलन के लिए कटिबद्ध हों और अनुचित आरक्षण को प्रश्रय न दें; जो संख्या के बजाय व्यक्तिगत गुणों को और योग्यता को महत्व दें; जो दलीय स्वार्थों के स्थान पर निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र के प्रति समर्पित हों; जो देश को पश्चिम का नकलची बनाने के बजाय भारतीय अस्मिता का संवाहक बना सकें; जो

विलासिता और नाना व्यसनों में लिप्त होने के बजाय सादगी का जीवन जीने के अभ्यासी हों, आदि आदि।

इस प्रकार यह सूची और काफी लम्बी हो सकती है। सूची को और लम्बा करने की आवश्यकता नहीं है। मुद्दे की कुछ बातें हमने गिना दी हैं। आर्यसमाज शुरु से ही मानवीय श्रेष्ठता का अर्थात् आर्यत्व का उपासक रहा है। इसलिए अब भी उसे पार्टी के बजाय श्रेष्ठ और सदाचरण वाले व्यक्ति को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। सार्वदेशिक सभा ने देश के सामने त्रिसूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया है—गोहत्याबन्दी, शराबबन्दी और अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का समर्थन। इन सूत्रों में आप कुछ सूत्र और जोड़ सकते हैं, जैसे, वर्तमान सरकार ने संस्कृत को शिक्षा नीति में से निष्कासित करने का कुत्सित षड्यंत्र किया है, अल्पसंख्यकों के आरक्षण के नाम पर नया वर्गभेद पैदा किया है; अल्पसंख्यक आयोग बनाकर समान मानवाधिकार के सिद्धान्त का उल्लंघन किया है; साम्प्रदायिकता को भड़का कर स्थान स्थान पर साम्प्रदायिक दंगे करवाए हैं, भ्रष्टाचार और मंहगाई बढ़ाई है, कालेधन को प्रश्रय दिया है; नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन किया है। यह सूची भी कहीं और लम्बी न हो जाए, इसलिए हमारा कहना यही है कि ये कुछ कसौटियां हैं जिन पर उम्मीदवारों को कस सकते हैं। उम्मीदवार सभी दलों के आपके पास आएंगे और तरह तरह के वायदे भी करेंगे। जिन कसौटियों की बात हम कह रहे हैं, उन पर हां की मुहर भी लगाएंगे। पर ऐसा तो अभी तक हरेक चुनाव में होता आया है। आप उम्मीदवार के वायदों पर मत जाइए। अपनी कसौटी पर कस कर देखिए। हो सकता है कि सभी कसौटियों पर कोई भी उम्मीदवार खरा न उतरे। तब आपको ऐसे व्यक्ति को वोट देना चाहिए जो आपके सिद्धान्तों के अधिक से अधिक अनुकूल हो और जिसके व्यक्तित्व पर आपको सचमुच सत्य और दृढ़ता की छाप दिखाई दे। वही व्यक्ति आपकी आशाएं पूरी कर सकेगा। अन्य कोई भी नहीं।

१२ नवम्बर १९८६



“संस्कृत, संस्कृति और आर्य विचारधारा के प्रसार के लिए वे सर्वात्मना समर्पित हैं। ज्ञान के भण्डार, सादा से दीखने वाले, किन्तु दृढ़ एवं सुव्यवस्थित विचार—सरणि वाले, स्वभाव से विनोदप्रिय, अजातशत्रु, क्षितीश जी यशस्वी, विद्वान्, आर्यरत्न, देशप्रेमी, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, सरल, लोभरहित, दयालु, संस्कृत के विचक्षण विद्वान् हैं।”

—श्रीमती कुसुम विद्यारत्न

पूर्व—प्रवाचिका, लेडी श्रीराम कॉलेज, नई दिल्ली

सुभाषित

हिन्दुस्तान एक ईश्वरीय उद्यान है, खुदा का बनाया बगीचा है। इस बगीचे में सुन्दर रमणीय झरने हैं, पवित्र नदियां हैं और बड़े-बड़े तपस्वी पुरुषों द्वारा पवित्र बनाये गये वन और उपवन उपलब्ध हैं।

हिन्दुस्तान की रज मेरे लिए पवित्र है।

हिन्दुस्तान में जन्मे अनेक वीर और पवित्र पुरुषों का खून मेरी नसों में बहता है।

हिन्दुस्तान में जन्मे ऐसे महापुरुषों की हड्डियों से ही मेरी हड्डियां बनी हैं।

हिन्दुस्तान की सब कौमों और सब धर्मों के पुत्र मेरे भाई ही हैं। हर एक नर-नारी को हिन्दुस्तान के लिए अपनी जान और अपनी जायदाद कुरबान करनी चाहिए।

हिन्दुस्तानी माई-बहन की सेवा ही मेरे जीवन का उद्देश्य है, और वही मेरा आधार है।

इसलिये हे भारत माता! तेरी सेवा करने में तू मेरी सहायता करना।

— महात्मा गांधी (४ मई, १९०७ दक्षिण अफ्रीका)

राजनीति नहीं, राष्ट्र-नीति

गत डेढ़ वर्ष में देश में जितनी राजनीतिक उठा-पटक हुई है, उतनी आज़ादी के बाद गत चालीस वर्षों में नहीं हुई थी। विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार और चन्द्रशेखर की सरकार कितने दिन तक टिक पाई? इससे पहले जब गैर-कांग्रेसवाद की लहर चली थी तब जनता पार्टी शासन में आई थी। उसमें ५ दलों का सहयोग था। तब पंच-पतिका पांचाली से साहित्यकार उसकी उपमा दिया करते थे। वह परीक्षण भी सुखद नहीं रहा तो उसके बाद जनता ने पुनः कांग्रेस को ही गद्दी सौंप दी। इन्दिरा गांधी का दुबारा सत्ता में आना मामूली बात नहीं थी। पर जिस निर्मम ढंग से इन्दिरा गांधी की हत्या हुई उसके कारण राजीव गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस इतना बड़ा बहुमत लेकर संसद में आई कि सारा देश ही नहीं, सारा संसार चकित हो गया।

कुछ वैसी ही बात इस बार भी हुई। राजीव गांधी की हत्या ने सारे देश को हिला दिया। पर उसका परिणाम यह अवश्य हुआ कि गैर-कांग्रेसवाद के नाम पर उभरे नेता फिर बौने सिद्ध हो गए और कांग्रेस को फिर सबसे अधिक सीटें मिल गईं। इसे भी सहानुभूति की लहर का परिणाम कह सकते हैं। खासतौर से दक्षिण भारत ने जिस प्रकार इस बार कांग्रेस को जिताया है, उसमें यह भाव भी झलकता है कि दक्षिण ने राजीव गांधी की नृशंस हत्या के अपने ऊपर लगे कलंक का

प्रायश्चित्त किया है। अन्यथा यह कैसे होता कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में, खास तौर से उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे देश के विशालतम राज्यों में, जिन्हें आज भी गंगा-यमुना के विशाल उर्वर मैदान के नाते असली हिन्दुस्तान कहा जाता है, कांग्रेस का इस तरह सफाया हो जाता। कभी-कभी तो ऐसा भी लगने लगता है कि अब जैसे भाजपा उत्तर भारत की पार्टी बन गई हो और कांग्रेस दक्षिण भारत की। क्या यह घटनाक्रम देश के भविष्य के मानचित्र पर कोई असर नहीं डालेगा? जिस कांग्रेस को पिछले चुनाव में जनता ने नकार दिया था, उसी कांग्रेस को पुनः सर्वाधिक मतों से विजयी बना दिया।

इसे कुछ लोग भारतीय जनता की राजनीतिक जागृति का प्रमाण मानते हैं। पर असल में इस बार चुनाव जिस हिंसात्मक ढंग से सम्पन्न हुए हैं, उससे देश में राजनीतिक मूल्यों के दिन-प्रतिदिन हास का ही संकेत मिलता है। संसार के महानतम लोकतंत्र पर गर्व की बात हम जिस शान से कहते हैं, अब लोकतंत्रीय मूल्यों के अवमूल्यन और राजनीति के अपराधीकरण पर लज्जा से सिर भी उसी शान से झुक जाता है। जहां राजनीति केवल संकीर्ण दलीय स्वार्थों तक ही सीमित रह गई हो, वहां वह देश लोकतंत्र के नाम पर बदनुमा धब्बा ही तो है।

गैर-कांग्रेसवाद के प्रवर्तक और प्रखर राष्ट्रवादी तथा अपने ढंग के अन्यतम विचारक राम मनोहर लोहिया कहा करते थे कि रोटी को तवे पर उलट-पुलट नहीं करते रहोगे तो वह जल जाएगी। इसलिए कांग्रेस को भी सही रास्ते पर लाना है तो उलट-पुलट करते रहो। अब तो हमने यह उलट-पुलट भी देख ली और देश की जनता ने समझ लिया कि भले ही बिना उलटे रोटी जलने की स्थिति तक पहुंच गई हो, फिर भी उससे येन केन प्रकारेण पेट की पीर तो पूरी होती। गैर-कांग्रेसी नेताओं ने तो जली-भुनी रोटी भी जनता के लिए नहीं छोड़ी और देश को इस हद तक दिवालिया बना दिया कि हमें अपना बीस टन सोना तक बेचना पड़ा, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में हमारी साख न गिरे। पर क्या इससे हमने स्वयं संसार के सामने डौंडी पीट कर घोषणा नहीं कर दी कि हमसे संभल कर रहना, हम दिवालिये हो गए हैं?

किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य होने में कोई दोष नहीं है, जिस प्रकार किसी भी सम्प्रदाय का अनुयायी होने में कोई दोष नहीं है। भारतीय संस्कृति की यही तो विशेषता है, यही तो संसार को उसकी देन है कि उसने मानव के बुद्धि-तत्त्व का आदर करते हुये उसे विचार-स्वातंत्र्य की छूट दी है। भारत ने धर्म को विचार के बजाय आचार के साथ जोड़ा है। जब तक मानव-मानव में बुद्धिभेद है, तब तक विचारभेद भी रहेगा। इसीलिए यहां विचारभेद होने पर विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों में शस्त्रार्थ की नहीं, शास्त्रार्थ की परम्परा थी। किसी भी सम्प्रदाय

का अनुयायी होना मात्र साम्प्रदायिकता नहीं है। साम्प्रदायिकता तब पैदा होती है, जब आप अपने सम्प्रदाय को राष्ट्र से बड़ा मानने लगते हैं। इसीलिए राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकता साथ-साथ नहीं चल सकते। क्या तो साम्प्रदायिकता छोड़ो, या राष्ट्रवाद छोड़ो। यदि राष्ट्रवाद छोड़ा तो राष्ट्र का बंटाना होगा ही।

यही बात दलीय राजनीति के साथ है। अपने दल के स्वार्थों को पूरा करने के लिए किसी भी कुकर्म को जायज़ मानना परले दर्जे की साम्प्रदायिकता है। आज यही दलीय राजनीति की संकीर्णता राष्ट्रवाद को घुन की तरह खा रही है। इसी दलीय राजनीतिक संकीर्ण साम्प्रदायिकता ने राजनीति का अपराधीकरण किया है और हरेक भले मानस की दृष्टि में राजनीति घृणा की चीज़ बन गई है। जब तक कोई राजनीतिक नेता शासन की कुर्सी पर विद्यमान है तब तक अपने रौब से सबको दमित करता है, किन्तु जिस दिन कुर्सी पर नहीं रहता, उस दिन वह गली के आवाज़ कुत्तों से भी गया-गुज़रा बन जाता है। राजनीतिक नेता भी इस सच्चाई को पहचानते हैं, इसीलिए वे 'घटं भित्त्वा पटं छित्त्वा कृत्वा रासभरोहणम्', अथवा अपने साथ गुण्डों की फौज खड़ी करके कुर्सी पर बने रहना चाहते हैं। अब तो गुण्डे भी समझदार बन गए हैं। वे देखते हैं — जब हमारे कारण ही ये नेता कुर्सी पर पहुंचते हैं, तो हम स्वयं ही कुर्सी क्यों न हथिया लें! इसीलिए इस बार के विधानसभा और लोकसभा के चुनावों में कितने हिस्ट्रीशीटर चुनकर आये होंगे, इसका शायद सही हिसाब बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव बता सकें, क्योंकि वही इस विद्या में माहिर हैं।

कांग्रेस का सौभाग्य है कि इस बार जनता ने उसमें विश्वास प्रकट किया है। पर हाय रे दुर्भाग्य! यह विश्वास भी इतना अधूरा रहा कि कांग्रेस को पूर्ण बहुमत नहीं मिल सका। उसे भी अन्य दलों का सहयोग प्राप्त करना पड़ेगा और अन्य दल अपने सहयोग की कीमत वसूल करेंगे, तो त्रिशंकु फिर आकाश में लटक जाएगा। उस त्रिशंकु को अपने वरदान से स्वर्ग तक केवल ऋषि विश्वामित्र ही पहुंचा सकते हैं, अन्य कोई नहीं। वह ऋषि विश्वामित्र सिवाय राष्ट्र के और कुछ नहीं हो सकता। दलीय राजनीति छोड़ो, राष्ट्रनीति अपनाओ। उस राष्ट्रनीति के लिए हरेक दल को कीमत चुकानी पड़ेगी। इसीलिए आपको डा० हेडगेवार की यह उक्ति याद दिला रहे हैं—

‘कोई लोग कहते हैं कि मार्ग में अनन्त कठिनाइयां हैं। मैं कहता हूं, कठिनाइयां भले ही हों, हमें तो पहले से ही यह पता होना चाहिए कि हमारा मार्ग कंटकाकीर्ण है। किसे आशा थी कि इस पथ पर गुलाब की पंखुड़ियां बिछी होंगी? राष्ट्र को अपना पूर्व-गौरव प्राप्त करा देना थोड़ी गप्प नहीं, न वह टके सेर मिलने वाली भाजी है। वह तो अत्यन्त अनमोल रत्न है, जिसे खरीदने के लिए पूरी कीमत देनी

पड़ती है। एक पाई भी कम देने से काम नहीं चलता। अपने देश के विगत वैभव को प्राप्त करने के लिए आपके सिवा और कौन सर्वस्व त्याग और अनवरत पुरुषार्थ कर सकेगा? भारत की भाग्य-लक्ष्मी को प्रसन्न करने वाला तुम्हें छोड़कर और कौन हो सकता है? और तुम्हें ही यह सब करना होगा।”

३० जून १९६१



स्वयं को पहचानो

“यह अस्तित्वमय जितना दृश्यमान जगत् है उसके सबसे उच्च शिखर पर यदि कोई आसीन है तो वह ‘मैं’ हूँ, मैं उत्तम पुरुष हूँ, ‘मैं’ पुरुषोत्तम हूँ, ‘मैं’ नर के रूप में नारायण हूँ, ‘मैं’ शक्ति का भण्डार हूँ।

परन्तु पौराणिक काल में अवैदिक विचारधारा भारतवर्ष में फैल गई। उसी समय सर्वत्र इस भावना का प्रसार हुआ कि—

‘पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसंभवः।’

अर्थात्—‘मैं पापी हूँ, पापकर्म करने वाला हूँ, पापात्मा हूँ और पाप के कारण ही मेरा जन्म हुआ है।’ जो उत्तम पुरुष और पुरुषोत्तम था, उसकी इतनी अवमानना, उसका इतना पतन? समस्त वेदों और उपनिषदों में ऐसा एक भी वाक्य नहीं आया जिसमें मनुष्य के जन्म को पापमूलक बताया गया हो, जिसमें उसका इस प्रकार अपमान किया गया हो। जो ‘अमृत का पुत्र’ है (श्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः), वह पाप की औलाद कैसे होगा? मनुष्य-योनि पूर्वजन्म के सुकृतों और पुण्यों का परिणाम है, फिर वह पाप-योनि कैसे हो सकती है? मनुष्य-जन्म को पापमूलक मानने की प्रवृत्ति कदाचित् बौद्धधर्म से पुराणों में आई, और बौद्धधर्म से ही वह ईसाइयत और इस्लाम जैसे सेमेटिक मतों में गई। मनुष्य-जाति के अधःपतन का बहुत-कुछ उत्तरदायित्व इस अवैदिक विचारधारा के सिर है।

‘मैं कौन हूँ?’ — इसका स्पष्ट उत्तर वेद ने यों दिया है —

अहं इन्द्रो न पराजिय इद्धनम्। न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन॥

‘मैं इन्द्र हूँ, मेरा धन मुझे पराजित करके कोई नहीं छीन सकता। मैं अपने ऐश्वर्य के कारण कभी पराजित नहीं हो सकता, मैं कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता।’ ‘मैं पुरुषोत्तम हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं इन्द्र हूँ—इन सब वाक्यों का एक ही अर्थ है और वह यह कि ‘मैं’ शक्तिमान हूँ, मैं शक्ति का केन्द्र हूँ। मेरे इन्द्र होने का ही यह स्पष्टीकरण है कि मेरा कोई पराभव नहीं कर सकता। ‘मैं’ नाम की जो वस्तु है, वह शक्तिवान् है या निर्बल है, इस प्रश्न का उत्तर इस मंत्र ने इस रूप में दिया कि ‘मैं शक्तिमान् हूँ, मैं इन्द्र हूँ।’ इन्द्र का अर्थ है, शत्रुओं का विदारण करने वाला (इन्+द्र)। मैं इन्द्र हूँ। इसका यही अर्थ है कि मैं इतना सामर्थ्यवान् हूँ कि अपने समस्त शत्रुओं का विदारण कर सकता हूँ और मेरा कोई पराभव नहीं कर सकता।”

—‘चयनिका’, पृष्ठ ११२

सुभाषित

मन-मोर मेघेर संगी, उड़े चले दिग्दिगन्तेर् पाने
निस्सीम शून्ये श्रावण-वर्षण-संगीते रिमझिम रिमझिम रिमझिम

मन-मोर मेघेर् संगी।

वायु बहे पूर्व-समुद्र होते उच्छल-उच्छल तटिनी-तरंगे

मन-मोर घाय तारी-भक्त प्रवाहे ताल-तमाल-अरण्ये

क्षुब्ध-शाखाएँ आन्दोलने, मन-मोर मेघेर संगी।

मन-मोर हंस-बलाकार-पाखाय जाय उड़े

चकित-चकित कचचित् तड़ित-आलोक

झंझार-मंजीर बाजाय झंझा रुद्रो आनन्दे,

कल-कल-मन्दे निर्झरणी आछे प्रलय आछने,

मन-मोर मेघेर संगी।

मेघ का साथी मेरा मन दिग्-दिगन्त की ओर उड़ा जा रहा है, श्रावण की वर्षा के रिमझिम संगीत में निस्सीम शून्य की ओर।

पूर्व सागर की ओर से बहती वायु तटिनी की तरंगों को छल-छल करके उछाल रही है, मेरा मन उसके उन्मत्त प्रवाह में बहा जा रहा है। ताल-तमाल से भरे अरण्य में चंचल शाखाएँ डोल रही हैं। मेघ का साथी है मेरा मन!

मेरा मन चकित, कहीं तड़ित-आलोक में हंसों की पंक्ति की तरह पंख फैलाए उड़ा जा रहा है। झंझावात घोर आनन्द में मंजीर को झनझन बजा रहा है। मन्द स्वर से कलकल करती निर्झरणी प्रलय का आह्वान कर रही है, और मेघ का साथी मेरा मन उड़ा जा रहा है।

(यूथ क्लब के पावस ऋतु सम्बन्धी एक समारोह में अनिमेष (कक्षा ८) द्वारा रवीन्द्र-संगीत के रूप में गाया गया गीत)

अब तो धूल बैठ चुकी है

राजधानी में बरसात को भी राजनीति की हवा लग गई है। राजधानी का रंग ही ऐसा है कि यहां की कोई भी चीज़ बिना उस रंग में रंगे रह नहीं सकती। अब मौसम विभाग भले ही कुछ भी कहता रहे, पर जानकार लोग जानते हैं कि राजधानी में बरसात का पहला छींटा तब पड़ा जब दसवीं लोकसभा का मतदान हुआ। फिर गरमी की तपिश बढ़ चली। दूसरी बारिश तब हुई जब नई संसद का निर्माण हो गया और फिर गर्मी बढ़ चली। तीसरी अच्छी बारिश तब हुई जब नरसिंह राव की नई सरकार को विश्वास-मत प्राप्त हो गया। और चौथी हुई लोक

समाध्यक्ष के चुनाव के बाद। पांचवीं बारिश की आशा राजधानी के लोग तब कर रहे थे जब सब हंगामा शान्त हो जाए और नया बजट पेश हो जाए। वही हुआ। उसके बाद बाकायदा बरसात का मौसम आ गया।

अब सारी धूल बैठ चुकी है। पर इस बरसात के कारण होने वाली और मुसीबतें भी मुंह बनाये हमारे सामने खड़ी हो गई हैं। असम, उड़ीसा और महाराष्ट्र में भयंकर बाढ़ आई है। उधर तमिलनाडु और कर्नाटक में कावेरी जल का विवाद ऐसा गम्भीर रूप धारण कर गया है, जैसे कि ये दोनों राज्य एक ही देश भारत के अंग न हों, बल्कि जैसे दो परस्पर विरोधी अलग-अलग राष्ट्र हों। वास्तविकता यह है कि पानी का संकट इस समय न कर्नाटक में है, न तमिलनाडु में। दोनों जगह खूब अच्छी बारिश हुई है, सब तालाब और नदियां लबालब भरी हुई हैं। कर्नाटक में तो कावेरी में पानी इतना अधिक बढ़ गया है कि उस पानी की निकासी के लिए बांध के फ्लड-गेट खोलने पड़े हैं। यह अधिक पानी अब तमिलनाडु में नहीं जाएगा तो और कहाँ जाएगा? उधर तमिलनाडु वाले कहते हैं कि हमारे लोग पानी के अभाव में प्यासे मर रहे हैं और कर्नाटक वाले कहते हैं कि हमारी खेतियां सूख रही हैं।

एक राष्ट्र का अर्थ होता है कि जैसे हाथ-पांव आदि सब अंग एक ही शरीर के हिस्से होते हैं और हरेक अंग का अलग-अलग और एक दूसरे से भिन्न कार्य होते हुए भी वे शरीर की ही सहायता करते हैं; उसी तरह सब राज्य अलग-अलग होते हुए भी मिलकर राष्ट्र की सहायता करते हैं। बिना अंगों के सहयोग के शरीर-यात्रा नहीं चल सकती, तो बिना राज्यों के सहयोग के राष्ट्रयात्रा भी नहीं चल सकती। हरेक अंग मनमानी करते हुए दूसरे अंग के विरोध में खड़ा हो जाए तो आहत शरीर होगा न! यही बात राष्ट्र के साथ है। पर आज दृष्टि इतनी संकीर्ण हो गई है कि राष्ट्र की चिन्ता किसी को नहीं है। हरेक राज्य ऐसे बात करता है जैसे वह एक अलग राष्ट्र हो। यह राजनीतिक क्षुद्रता की पराकाष्ठा है। 'स्वार्थी दोष न पश्यति', स्वार्थी को अपना दोष कभी नहीं दिखता, और दूसरे का दोष न केवल तुरन्त दिखता है, बल्कि दूसरे के गुण भी दोष नज़र आते हैं।

इस बार के चुनावों के बाद जो दृश्य उभर कर सामने आया है उसमें दर्दनाक सच्चाई यह है कि पुनः किसी एक दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला है। ठीक है, श्री नरसिंह राव की स्थिति विश्वनाथ प्रतापसिंह से अच्छी है, पर जनादेश से यह स्पष्ट झलकता है कि इस समय देश को किसी दल में पूर्ण आस्था नहीं रही है। इसलिए देश के समक्ष इतिहास का गम्भीरतम संकट उपस्थित हुआ है। वह यह है कि उसे फिर अल्पमत सरकार मिली है, और पहले से जो समस्याएं चली आ रही हैं, वे सब ज्यों की त्यों बरकरार हैं।

दूसरा तथ्य यह भी है कि इस बार के चुनावों ने नव-निर्मित दलों को निर्ममता से ठुकरा दिया है। इसका सर्वप्रमुख उदाहरण है समाजवादी दल का सफाया। इस दल ने ३०० उम्मीदवार खड़े किए और उनमें केवल पांच जीते। इस प्रकार के समीकरण तैयार हुए—राष्ट्रीय मोर्चा और वामपंथी मोर्चा बायीं ओर, कांग्रेस बीच में, और भारतीय जनता पार्टी दायीं ओर। इससे यह भी ध्वनित होता है कि यदि इन तीनों गुटों की साझी सरकार बन जाए तो देश के लिए लाभदायक हो सकती है। क्योंकि इस समय देश के सामने जो विषम और विकट समस्याएं हैं उन्हें कोई एक राजनीतिक दल हल नहीं कर सकता। पर फिलहाल तो त्रिशंकु सरकार ही देश के भाग्य में है जिससे भविष्य के लिए कोई बहुत आशा नहीं बंधती।

इतना तो स्पष्ट ही है कि कांग्रेस, वामपक्ष और दक्षिण पक्ष—इन तीनों को मिलकर परस्पर सहयोगियों की तरह आचरण करना होगा, यदि सरकार को स्थिर रखना है और आर्थिक संकट से पार पाना है। इसके लिए इन तीनों पक्षों को काफी समझदारी का परिचय देना होगा, अन्यथा तमिलनाडु और कर्नाटक वाली 'देखि परोदय जो जरे' वाली मनोवृत्ति रही, तो न सरकार स्थिर रह सकेगी न ही अन्य संकटों से पार पा सकेगी। पर स्थिरता की इसी आकांक्षा की बदौलत यदि नरसिंहराव की सरकार इसी मुगालते में रही कि वामपंथी गुट और दक्षिण-पंथी गुट दोनों हर मुद्दे पर उसका समर्थन करते रहेंगे, तो यह गलत होगा। वर्तमान सरकार जिस तरह बिना अन्य दलों से परामर्श किए स्वयं महत्त्वपूर्ण निर्णय करती रही है, वह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं चल सकेगी। अन्य दल अपना समर्थन वापिस भी ले सकते हैं, और फिर नये चुनावों की स्थिति आ सकती है, जो देश के आर्थिक संकट को और बढ़ाने वाली होगी।

अच्छा होता कि तीनों गुटों की सम्मिलित सरकार बनती और वे दलीय हितों के बजाय राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से काम करते। पर ऐसा सम्भव नहीं दीखता। श्री अटल बिहारी वाजपेयी तो यहां तक कह चुके हैं कि वामपंथी गुट और कांग्रेस मिलकर सरकार बनालें और भाजपा को अकेले ही विपक्षी दल के रूप में छोड़ दें, क्योंकि वामपंथी कभी भाजपा के साथ मिलकर सरकार नहीं चलाना चाहेंगे, भले ही उनका दार्शनिक और व्यावहारिक जनाधार कितना ही नगण्य क्यों न हो। जब से सोवियत संघ ने कम्युनिज्म से पीछा छोड़ा लिया है, तब से तो उनके नीचे से धरती ही खिसक चुकी है। पर वामपंथी गुट की ऐंठ कायम है और यह ऐंठ रस्सी के जल जाने के बाद वाली ऐंठ-भर है।

फिर क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कांग्रेस और भाजपा मिलकर सरकार बना लें! काश, ऐसा हो सकता! यदि हो सकता तो निश्चित ही देश को स्थिर सरकार

मिल सकती, वामपन्थी गुट के शोर-शराबे के बावजूद और उससे सचमुच देश का लाभ होता। पर कांग्रेस अभी तक नेहरूवादी व्यवस्था और विचार-तंत्र से ऐसी जुड़ी हुई है कि वह अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की नीति छोड़ दे, विकृत धर्मनिरपेक्षता को तिलांजलि दे दे, सबके लिए समान कानून, समान अवसर और समान न्याय की व्यवस्था हो, आतंकवादियों के सामने घुटने टेकने की नीति त्याग दे तो भाजपा भी अपने दृष्टिकोण को उदार बनाने में संकोच नहीं करेगी। जिन राजनीतिक दलों के चिन्तन में सिवाय दलीय हित के कभी राष्ट्रहित को स्थान नहीं मिला, वे कभी स्वनिर्मित अन्धी गुफा में से नहीं निकल सकते। देश में कम से कम भाजपा ही एक ऐसी पार्टी नजर आती है, जो राष्ट्रहित के नाम पर बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने को तैयार हो सकती है, बशर्ते कि उसमें यथार्थतः राष्ट्र-हित निहित हो। पर क्या कांग्रेस इतना ऊंचा उठ सकेगी?

देश में पुनः १५ अगस्त का स्वाधीनता-दिवस आया है। यह आत्म-विश्लेषण का अवसर है। यदि इस अवसर पर भी हमने केवल तिरंगा झण्डा लालकिले पर फहरा कर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली, तो राष्ट्रहित की चिन्ता कौन करेगा, और कब?

११ अगस्त १९६१



“नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार और कवि हैनरिक इब्सन ने तो राजनीतिज्ञों से चिढ़कर यहां तक कह दिया है :

‘वैज्ञानिक लोग जानवरों की चीर-फाड़ कर उन्हें जो-जो तकलीफ देते हैं, वह अक्षम्य है, वे पत्रकारों और राजनीतिज्ञों पर अपने परीक्षण क्यों नहीं करते?’

लगता है कि इब्सन पत्रकारों से भी कम परेशान नहीं रहे होंगे। पर अमरीकी इतिहास-वेत्ता हैनरी एंडम्स ने जो बात कही है, वह बहुत गहरे पैठकर ही कही जा सकती है। उसका कहना है:

‘तथ्यों की उपेक्षा करने में ही व्यावहारिक राजनीति निहित है।’

पर हमारे मन में राजनीति की एक और परिभाषा उमड़ रही है। वह है:

‘जो मरने के बाद भी पीछा न छोड़े, उसका नाम राजनीति है।’

संस्कृत में कहावत है: ‘मरणान्तानि वैराणि’ दुश्मनी तभी तक रहती है जब तक व्यक्ति मर नहीं जाता। पर राजनीति की बात निराली है— यहां मरने के बाद दुश्मनी की बेल और हरी होती है।’

‘फिर इस अंदाज से बहार आई’, पृष्ठ २४